जैन दर्शनके समन्वयवादी दृष्टिकोणकी ग्राह्यता

यों तो किसी भी युग और किसी भी कालमें संघटन और ऐक्यकी महत्ता और आवश्यकता है, किन्तु वर्तमानमें उसकी नितान्त अपेक्षा है। राष्ट्रों, समाजों, जातियों और धर्मों सभीको एक सूत्रमें बंधकर रहनेकी जरूरत है। यदि राष्ट्र, समाज, जातियां और धर्म सहअस्तित्वके व्यापक और उदार सिद्धान्तको स्वीकार कर उसपर आचरण करें तो न राष्ट्रोंमें, न समाजोंमें, न जातियोंमें और न धर्मोंमें परस्पर संघर्षकी नौबत आ सकती है। विश्वके मानव यह सोच लें कि मानवताके नाते हमें जैसे रहने और जीनेका अधिकार है वैसे ही दूसरे मनुष्योंको भी, चाहे वे विश्वके किसी कोनेके, किसी समाजके, किसी जातिके, किसी धर्मके या किसी वर्गके हों। आखिर मनुष्य सब हैं और पैदा हुए हैं तो उन्हें अपने ढंगसे रहने तथा जीनेका भी हक प्राप्त है। यदि हम उनके इस हकको छीनते हैं तो यह न्याय नहीं कहलायेगा—अन्याय होगा और अन्याय करना मनुष्यके लिए न उचित है और न शान्तिदाता एवं प्रेम-प्रदर्शक है। यदि मनुष्यके सामने इतना विचार रहता है तो उनमें कभी संघर्ष नहीं हो सकता। संघर्ष होता है स्वार्थ और आत्माग्रहसे—अपने ही अस्तित्वको स्वीकार कर इतरका विरोध करनेसे। विश्वमें जब-जब युद्ध हुए या होते हैं तब-तब मनुष्य जातिके एक वर्गने दूसरे वर्गका विरोध किया, उसपर हमला किया और उसे ध्वस्त करनेका प्रयास किया है। आज भी विश्व दो गुटोंमें बंटा हुआ है तथा ये दोनों गुट एक-दूसरेके विरुद्ध मोरचाबन्दी किये हुए हैं। अपनी शक्तिको विरोधीके ध्वंसमें प्रयुक्त कर रहे हैं। फलतः युद्धका भय या युद्धकी आशंका निरन्तर रहती है। यदि दोनों गुट विरोधमें नहीं, निर्माणमें अपनी सम्मिलित शक्तिका उपयोग करें तो सारा विश्व सदा निर्भय, शान्त, सुखी और समृद्ध हो सकता है।

यद्यपि एक रुचि, एक विचार और एक आचारके सब नहीं हो सकते, सबकी रुचियां, सबके विचार और सबके आचार भिन्न-भिन्न होते हैं, किन्तु रुचि-भिन्नता, विचार-भिन्नता और आचार-भिन्नताके होते हुए भी उनमें समन्वयकी संभावना निश्चय ही विद्यमान रहती है। एक परिवारमें दस सदस्य हैं और सबकी रुचि, विचार और आचार अलग-अलग होते हैं। एक सदस्यको उड़दकी दाल अच्छी लगती है, दूसरेको अरहरकी दाल प्रिय है, तीसरेको हरी शाक स्वादिष्ट लगती है। इसी तरह अन्य सदस्योंकी रुचि अलग-अलग होती है। विचार भी सबके एक-से नहीं होते। एक राष्ट्रकी सेवाका विचार रखता है, दूसरा समाज-सेवाको अपना कर्त्तव्य समझता है, तीसरा धर्ममें संलग्न रहता है। दूसरे सदस्योंके भी विचार जुदे-जुदे होते हैं। आचार भी सबका एकसा नहीं होता। एक कुर्ता, धोती और टोपी लगाता है, दूसरा कोट, पतलून और नेकटाईको पसन्द करता है, तीसरा पेटीकोट, साड़ी और जम्फरको अपनी पोशाक समझता है। यह तीसरा स्त्री सदस्य है, जो उस दश संख्यक परिवारकी ही एक सदस्या है। इसी प्रकार बच्चे आदि अपना पहिनाव अलग रखते हैं। इस प्रकार उस परिवारमें रुचि-भेद, विचार-भेद और आचार-भेद होनेपर भी उसके सदस्योंमें कभी संघर्ष नहीं होता। सबकी रुचियों, सबके विचारों और सबके आचारोंका ध्यान रखा जाता है और इस तरह उनमें सदा समन्वयके दृष्टिकोणसे सुख और शान्ति रहती है। कदाचित् छोटा-मोटा मत-भेद होनेपर आपसी समझौते या प्रमुखकी हितावह सलाहसे वह सब मतभेद दूर हो जाता है और पूरा परि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वार सुख-शान्तिसे जीवनयापन करता है। विश्व भी एक परिवार है और राष्ट्र उसके सदस्य हैं उनमें रुचि-भेद, विचार-भेद और आचार-भेद होना स्वाभाविक है, पर परिवारके सदस्योंकी तरह उनमें तालमेल बैठाना या समझदार राष्ट्रोंको बीचमें पड़कर निष्पक्ष ढंगसे उनमें समझौता करा देना आवश्यक है। इससे विश्वके छोटे-बड़े किसी भी राष्ट्रका अन्य राष्ट्रके साथ संघर्ष नहीं हो सकता। 'रहो और रहने दो' और 'जिओ और जीने दो' का सिद्धान्त ही सहअस्तित्वका सिद्धान्त है तथा यह सिद्धान्त ही मनुष्यजातिकी रक्षा, समृद्धि और हित कर सकता है। यह सिद्धान्त न्याय तथा सत्यका पोषक एवं समर्थक है। इस सिद्धान्तको ध्यानमें रखनेपर कभी न्याय या सत्यकी हत्या नहीं हो सकती तथा सारे विश्वमें निर्भयता एवं शान्ति बनी रह सकती है।

हमारे देशमें, जिसमें भगवान महावीर, गौतम बुद्ध, महर्षि जैमिनि, कणाद, अक्षपाद, कपिल आदि धर्मोपदेशकोंने जन्म लिया और अपने विचारों द्वारा जनकल्याण किया है, अनेक जातियाँ तथा अनेक धर्म हैं। सबका अपना-अपना स्थान है और सबको पनपने-बढ़नेका स्वातन्त्र्य है। एक जाति दूसरी जातिको, एक धर्म दूसरे धर्मको और एक वर्ग दूसरे वर्गको गिराकर बढ़ नहीं सकता। उसकी उन्नति या वृद्धि तभी सम्भव है जब वह दूसरेके भी अस्तित्वका विरोध नहीं करता, अपनी कुण्ठा, बुराइयों और कारणवश आ घुसी कमजोरियोंको ही हटानेका प्रयास करता है। सच तो यह है कि दूसरी जाति, दूसरा धर्म या दूसरा वर्ग अपनी जाति, अपने धर्म और अपने वर्गका बाधक नहीं होता, बाधक वे दोष होते हैं जो हमपर हावी होकर हमसे अनौचित्य करानेमें सफल हो जाते हैं। ऐसे दोष हैं संकीर्णता, असहिष्णुता, मूढ़ता, कदाग्रह, ईर्ष्या, अहंकार और अनुदारता। यदि सतर्कता, विवेक, सहिष्णुता, सत्याग्रह, अमात्सर्य, निरहंकार और उदारतासे काम लिया जाय तो जातियों, धर्मों और वर्गोंमें कभी भी संघर्षकी सम्भावना नहीं की जा सकती है। जो हमारा है वह सत्य है और जो परका है वह असत्य है, यही दृष्टिकोण संघर्षको जन्म देता है। इस संघर्षको बचानेके लिए अनेकान्तवादी दृष्टिकोण होना चाहिए। उस दृष्टिकोणसे ही परस्परमें सौहार्द सम्भव है। यदि कोई गलत मार्गपर है तो सही मार्ग उसके सामने रख दीजिये और उनमेंसे एक मार्ग चुननेकी छूट उसे दे दीजिये। आप उसके लिए अपना आग्रह न करें। निश्चय ही वह अपने विवेकसे काम लेगा और सत्यका अनुसरण करेगा।

सत्यका आग्रह

आज विज्ञानका युग है। समझदार लोग विज्ञानके आधारसे सोचना, कहना और करना चाहते हैं। यह दृष्टिकोण सत्यके आग्रहका दृष्टिकोण है। लेकिन कभी-कभी आग्रही उसके माध्यमसे असत्यका भी समर्थन करने लगता है। अतः पूर्वाग्रहसे मुक्त होनेपर ही सत्यको कहा और पकड़ा जा सकता है। समाजके दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों वर्ग भगवान् महावीरके शासनके अनुयायी हैं। छोटे-मोटे उनमें अनेक मतभेद हैं और उनके गृहस्थों तथा साधुओंमें आचार-भेद भी हैं। किन्तु सबको बाँधनेवाला और एकसूत्रमें रखने वाला महावीरका शासन है। जो मतभेद और आचार-भेद हो चुके हैं वे यदि कम हो सकें तो अच्छा है और यदि कम न भी हों तब भी वे एक सूत्रमें बँधे रह सकते हैं। पिछली शताब्दियोंमें दोनों परम्पराओंमें फासला ही हुआ है, उन्हें समेटनेका दूरदर्शी सफल प्रयास हुआ हो, यह ज्ञात नहीं। फलतः दोनोंका साहित्य, दोनोंके आचार्य और दोनोंके तीर्थ उत्तरोत्तर बढ़ते गये हैं। इतना ही होता तो कोई हानि नहीं थी। किन्तु आज अपने साहित्य, अपने आचार्य और अपने तीर्थका आग्रह रखकर भी दूसरी परम्पराके साहित्य, आचार्य और तीर्थोंके विषयमें स्वस्थ दृष्टिकोण नहीं है। एक साहित्यके महारथी अपने साहित्यकी अनुशंसा करते समय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूसरेके साहित्यको उसकी छाया या अनुसरण सिद्ध करनेमें जब अपनी शक्ति लगाते हैं तो दूसरा उसका विरोध करनेके लिए तैयार रहता है। एक आचार्य अपनी श्रेष्ठता बतलाकर दूसरे आचार्यकी समालोचनाके लिए उद्यत रहता है तो समालोच्य आचार्य भी पीछे क्यों रहेगा। समाजके तीर्थोंका प्रश्न भी ऐसा ही है। अपना प्रभुत्व और हक रहे, दूसरेका वहाँ प्रवेश न हो, यह दृष्टिकोण समाजके दोनों वर्गोंको परेशान किये हुए है। फलतः संघर्ष भी होते हैं और उनमें विपुल धन-राशि भी व्यय होती है। यदि दोनों वर्ग महावीरके शासनमें आस्था रखते हुए समन्वयका दृष्टिकोण अपना लें तो दोनोंकी सम्मिलित शक्ति, दोनोंका सम्मिलित साहित्य और दोनोंके सम्मिलित तीर्थ समाजके अपार वैभवके सूचक तो होंगे ही, दोनों अपने विचार और आचारके अनुसार अपनी आस्थाको बनाये रखेंगे तथा संख्याकी दृष्टिसे वे दुगुने कहे जायेंगे। जबतक वे अलग-अलग दो भागों या तीन भागों में बँटे रहेंगे तबतक अन्य लोगोंको समुचित लाभ नहीं पहुँचा सकते हैं और न अहिंसा, स्याद्वाद, अनेकान्त एवं अपरिग्रह जैसे सिद्धान्तोंका विश्वको उचित मात्रामें दर्शन करा सकते हैं। अतः आवश्यक है कि जैन दर्शनमें अनेकान्तवादी या समन्वयवादी दृष्टिकोणपर गम्भीरतासे विचार करें और उसका आचरण कर ऐक्य एवं संघटनकी दिशामें प्रयत्न करें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org